ओ३म्

दयानन्द दिग्विजय

प्रणेता :—

ब्रह्मनिष्ठ श्री स्वामी धर्मानन्दजी वि० मा०

(आचार्य—सार्वभौम वैदिक परिवार संघ, मथुरा)

सम्पादक :

ईश्वरीप्रसाद 'प्रेम' एम० ए०

साहित्य रत्न सि० शास्त्री

प्रकाशक:—

...त्य प्रकाशन,

...दावन मार्ग, मथुरा.

मूल्य ६५ पैसे

सत्य प्रकाशन मथुरा के कु

पठनीय साहित्य

उपनिषद् प्रकाश	१०)
ईश्वर दर्शन	१)२०
ईश्वर भक्ति	१)५०
उपासना रहस्य	१)८०
नित्य कर्म विधिः	२)२०
ओंकार उपासना	)५०
वैदिक स्वर्ग की झाँकियाँ	३)
...हिनों की बातें	१)८०
...ं की बातें	१)८०
...व	१)४०
	१)
	३)५०
	१६)

सङ्गीत रत्नाकर[१,२]

बालोपयोगीग्रन्थमाला

बालक जो महान् बने	१)५०
मील के पत्थर	१)५०
कहानियाँ जो अमर हैं	१)२५
शिक्षाप्रद कहानियाँ	१)२०
छत्रपति शिवाजी	१)
अमरभारत	१)
चित्रमय दयानन्द	१)
मातृभूमि वन्दना	१)
माँ की लोरियाँ	१)
विद्यार्थी जीवन रहस्य	१)
नैतिक शिक्षा	१)

आर्यसमाज के मंतव्यों को समझने के लिए पढ़ें —

आर्यसमाजके स्वर्ण सिद्धान्त	)१५
...समाज की उपलब्धियाँ	)४०
...राष्ट्रनिर्माणयोजना	)२५
...और श्रीराम	)४०
...श्रीकृष्ण	)५०
...निर्माण	)३०
	)८०

दयानन्द दिग्विजय

प्रणेता

(आचार्य—सार्वभौम वैदिक परिवार संघ, मथुरा)

सम्पादक :

ईश्वरीप्रसाद 'प्रेम' एम० ए०
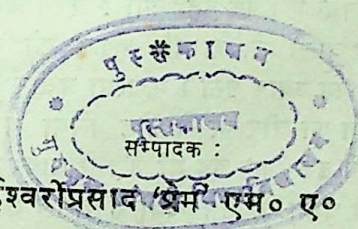
साहित्य रत्न सि० शास्त्री

*

प्रकाशक:—

सत्य प्रकाशन,

वृन्दावन मार्ग, मथुरा.

मूल्य) ६५ पैसे

गङ्गा का नीरव प्रशान्त तट। सवेरे का झुटपुटा। शीतल समार की भीनी-भीनी मदभरी थिरकन। ऊषा की मन्द मन्द स्मिति में सभी कुछ सुहावना और निखरा हुआ। गौर वर्ण, उन्नत ललाट जैसे इस धरती पर चांद ही उतर आया हो, उस महात्मा ने समाधि स्थिति से अपने नेत्र खोले। उस स्नेह-स्निग्ध दृष्टि-प्रसार में जैसे सम्पूर्ण वातावरण नहा कर निहाल हो उठा।

कुछ दूरी पर एक छाया हिली। अब स्पष्टतर हो रहा था। वह एक माँ है। अपने मृत लाल को गङ्गा के जल-प्रवाह की भेट कर वह अब लौटने लगी है। पर यह क्या ? अपने कलेजे के टुकड़े को यों जल-समाधि देने वाली मां, हाँ माँ, कफन को नहीं बहा सकी है। क्यों ? जिज्ञासा का ज्वार उठा। महात्मा अधीर हो उठे। ध्यान से देखा। वह कफन का चीर माँ ने ओढ़ लिया था। और इस प्रकार अपनी लज्जा को ढक कर वह माँ जल से बाहर हो पाई। तो स्थिति स्पष्ट थी एक ही धोती थी उस देवी के पास। उसी में से धोती फाड़-कर उसने अपने लाल का कफन बना लिया था। इसीलिए रात्रि के अँधेरे में उस एकान्त स्थल पर वह आई थी। अब उसी कफन को वापिस ले वह अपनी लज्जा ढक सकी है।

दरिद्रता का यह भीषण अभिशाप ! उफ !! महात्मा के निकट यह करुण दृश्य असह्य हो उठा। वह रो उठे, हाँ, सच में वह महात्मा फूट २ कर रो रहे थे। कवि ने ठीक ही लिखा है—

वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि।
लोकोत्तराणाम् चेतांसि कोनु विज्ञाति मर्हसि॥

ईश्वर के प्यारों की लीला सच में निराली है। बहिन की मृत्यु पर जिन आँखों में एक भी आँसू नहीं आ सका था। प्यारी-प्यारी करुणा की कविता ऐसी ममतामयी माँ की गोद को सूना करते समय, वृद्ध पिता को आश्रय-हीन करते हुए जिस 'पाषाण हृदय' के नेत्रों में

एक जल कण भी न छलक सका था, आज उसी विरक्त शिरोमणि के नैन अविराम नीर-धारा बरसा रहे थे। मानो 'बा' की मृत्यु पर बापू के प्रति लिखे गये कविवर रङ्ग जी के ये शब्द अपने आप में मूर्त हो उठे हों—

'रे सदियों के बाद हिमालय आँसू भर कर रोया!'

पिता की अपार वैभव राशि और ओखी मठ के महन्त का प्रलोभन-पाश जिस धीर यति को बाँधने में असफल प्रमाणित हुआ था, वह आज भारत माँ के करूण चीत्कार को अनसुना न कर सका काठ को भी छेद देने वाला भौंरा कोमलतम कमल की पाँखों में बन्द हो गया। प्रेम की कैसी माया है, यह कैसा जादू है! मानवता का प्यार उस महात्मा की चेतना को कुरेदने लगा। उसे लगा जैसे कोई अदम्य महाशक्ति उसके अन्तर को झकझोर रही है। उसके ओठ स्वयं ही बुदबुदाने लगे—

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः। मनु० (२।२०)

"सृष्टि से ले के पाँच सहस्र वर्षों से पूर्व समय पर्यन्त आर्यों का सार्वभौम चक्रवर्ती अर्थात् भूगोल में सर्वोपरि एकमात्र राज्य था, अन्य देश में माण्डलिक अर्थात् छोटे २ राजा रहते थे, अब इनके सन्तानों का अभाग्योदय होने से राज-भ्रष्ट होकर विदेशियों के पादाक्रान्त हो रहे हैं।"

यों भारत के अतीत के गौरवमय चित्र एक-एक करके उस महात्मा के मानस-पट पर छा से गये। उन्हें कैकेय प्रदेश के महाराज अश्वपति की यह घोषणा सुन पड़ी—

न मे स्तेनो जनपदे न कदर्यो न च मद्यपः।
नानाहिताग्निर्नाविद्वान् न स्वैरी स्वैरिणी कुतः॥

[मेरे सम्पूर्ण जनपद में न कोई कायर है, न कंजूस (अनुदार), न कोई शराबी है, न अविद्वान्, न कोई व्यभिचारी है, न व्यभिचा-

रिणी और न एक भी व्यक्ति ऐसा है जो अग्निहोत्र न करता हो।]
उन्हें मानव धर्म प्रणेता महर्षि मनु, गौतम, कपिल, कणाद, पतञ्जलि
व्यास और जैमिनि का युग याद आया। राम की धनुष टंकार, कृष्ण
का गीतोपदेश, अर्जुन का गाण्डीव, शिवा और प्रताप का शौर्य,
चाणक्य की राजनीति, कुमारिल और शंकराचार्य का ब्रह्मतेज,
महिमामयी मातायें और आन बान वाले अद्भुत बालक महात्मा की
चित्त सरिता में ये सभी तैरते दीख पड़े। जैसे नींद से जागे हों। वे
फिर बुदबुदाये—"अदीनाः स्याम शरदः शतम्' का पाठ करने वाली
आर्य जाति की यह दीन हीन-मलीन दशा क्यों ? धर्म, धम सर्वत्र धर्म
की धूमधाम ! इतने मन्दिर, इतने मठ, इतने ईश्वर, इतने तिलक,
इतने तीर्थ, इतने धाम और धर्माचार्यों की यह विशाल सेना फिर मेरा
प्यारा भारत परतन्त्र और दीन-हीन क्यों ? या तो 'यतो धर्मस्ततो
जयः' गीताकार का यह वचन झूठा है, 'धर्मो रक्षति रक्षितः' महर्षि
मनु की यह व्यवस्था असत्य है या फिर भारत धर्मात्मा नहीं—यह
सब धर्म नहीं, धर्माभास है, मिथ्या आडम्बर है, पाप रूप है। वे विचार
में गहरे डूब गये थे। महात्मा की अन्तर्भेदिनी दृष्टि से भारत के इस
घोर पतन, पराभव और मर्म स्पर्शिनी दरिद्रता का कारण छिपा न रह
सका। और वे यह भली भाँति जान सके कि भारत और सारे संसार
के दुःख-दुर्भाग्य का मूल कारण अज्ञान और अज्ञान जन्य नास्तिकता है-

"सब दुःखों का मूल है, ईश्वर जुदाई आपकी।
सब सुखों का स्रोत है भगवन् रसाई आपकी ॥"

उस दिव्य महात्मा ने पहचाना कि मेरे देश में धर्म के नाम प[र]
खुली हुई ये पुराणों की सस्ती दुकानें भ्रष्टाचार का केन्द्र हैं। सच [में]
इन दुकानों पर आस्तिकता का लेबिल लगाकर घोर नास्तिकत[ा]
का सौदा (ढकीहुई नास्तिकता) ही बिकता है।"

हाँ, तो महात्मा अपने आप में कहे जारहे थे—"अज्ञान मनुष[्य]
जाति का सबसे बड़ा शत्रु है। इसी अज्ञान का प्रेरा हुआ मनुष्य ए[क]

सत्य सनातन वेदोक्त धर्म के राज पथ को छोड़ विभिन्न मत मता-न्तरों की पगदण्डियों में उलझ कर रह गया है और यों प्रभु का प्यारा मानव समाज अपने अन्दर की शान्ति को खोकर घोर अशान्ति का सौदा खरीद बैठा है।" एक-एक करके अज्ञान के करिश्मे महात्मा के नेत्रों में झूल गये। अब उन नेत्रों में आँसुओं की जगह अज्ञान के प्रति आक्रोश की चिनगारियाँ थीं। अज्ञान-नाश या पाखण्ड-खण्डन मानो महात्मा का जीवन लक्ष्य बन गया। और एक दृढ़ निश्चय की मुद्रा में उन्होंने कहा—"अपनी ही मुक्ति की खोज भी एक विचित्र प्रकार का स्वार्थ ही है। समस्त दम्भ, पाखण्ड, अन्धविश्वास और गुरुडम के मायाजाल को चीर कर अज्ञान की तीखी और नुकीली दाढ़ों से माँ मानवता को बचाना ही अब मेरी पूजा, उपासना जप तप और योग-समाधि है।" गङ्गा तट से उठते २ उन्होने अपनी चित्त-भित्ति पर एक दृश्य उभरते देखा। आर्य जाति गौरव गुरु गोविन्दसिंह ईश आराधना में मग्न वीरवर लक्ष्मण (बन्दा वैरागी) को सम्बोधित कर कह रहे थे—आर्य, उठो माँ भारती तुम्हें पुकारती है।

और उसके साथ ही उन्हें, याद आया गुरुवर्य दण्डीजी का आदेश। आज वे गुरु आदेश के पीछे छिपी गहराई को, राष्ट्र-निर्माण और मानव-निर्माण की सही योजना को समझ सके थे। बस वे उठ खड़े हुए। उसके बाद ही लोगों ने देखा उस महात्मा ने अपने सशक्त हाथों में एक ध्वजा पकड़ी हुई है, उस पर लिखा है–'**पाखण्ड खण्डिनी पताका**'। यह नव युग निर्माता, क्रान्ति दूत देव दयानन्द के राष्ट्रोद्धार एवं विश्व कल्याण महायज्ञ का शुभारम्भ था।

\+ \+ \+

फाल्गुन वदी १४ संवत १९३४ को महर्षि लाहौर पधारे। ऋषि मुख से मूर्ति पूजा (बुत परस्ती) की कडी आलोचना सुनकर नवाब निवाजिश अलीखाँ बड़े प्रसन्न हुए। सोचा यह साधु बड़े काम का है। उन्हें अपनी कोठी पर ठहराया। अगले दिन के प्रवचन में महर्षि ने इस्लाम मत की समीक्षा की। हैरान होते हुए नवाब साहब

ने कहा—"महाराज यह कैसी अनोखी रीति है। कल उनके यहाँ ठहरे तो उनके मत की आलोचना की और आज हमारे यहाँ ठहरे तो इस्लाम की ही समीक्षा करने लगे।"

हँसते हुए ऋषि बोले—"इस प्रकार मैं ऋण चुकाता हूँ। जिसका खावे, उसकी कुछ सेवा करनी चाहिए। कल उनका खाया तो उनके घर के कूड़े करकट की सफाई की, आज आपका अतिथि हूँ तो आपके घर के कूड़े करकट की सफाई करना और इस प्रकार आपका कल्याण करना मेरा कर्त्तव्य हो जाता है।"

× + ×

अमृतसर में भगवान् दयानन्द के भक्त अपने भक्ति-भाजन का गुण्डों द्वारा निरादर होते देखकर, कोपावेश से शान्त न रह सके। वे चाहते थे कि उद्दण्ड और दुष्ट जनों को वहीं दण्डित किया जाय, परन्तु स्वामीजी ने उनको शान्ति प्रदान करते हुए कहा—'मत-मदिरा से उन्मत्त जनों पर कोप नहीं करना चाहिए। हमारा काम एक वैद्य का है। उन्मत्त मनुष्य को वैद्य औषधि देता है, न कि उसकी लीला पर मार पीट करता है। निश्चय जानिये आज जो लोग मुझ पर ईंट, पत्थर और धूल बरसाते हैं वही लोग आप पर कभी पुष्प वर्षा करने लग जायेंगे।'

और हम देख रहे हैं, महर्षि का अनुपम पुरुषार्थ, अद्भुत् त्याग, तप और बलिदान अपना रङ्ग लारहा है। मेरा कहना है कि वैदिक दिग्विजय हो चुका है। क्या आपको विदित नहीं है कि कुरान और बाइबिल की बुद्धि-सङ्गत एवं विज्ञान सम्मत नूतन व्याख्यायें अब प्रकाश में आरही है ? चमत्कारवाद का डेरा उठ रहा है। पौराणिक देवताओं की अलङ्कार परक नवीन व्याख्यायें प्रस्तुत की जा रही हैं। अवतारवाद और बहुदेवतावाद का पाप ध्वस्त हो रहा है। युग कवि

वे स्वर फूट रहे हैं – राम ! तुम मानव हो ईश्वर नहीं हो क्या ? मूर्ति पूजक कह रहे हैं—हम मूर्ति की नहीं, मूर्ति में भगवान् की पूजा करते हैं। कुछ यह कर अपनी लाज रख रहे हैं—'मूर्तिपूजा अज्ञानियों के लिये प्रथम सीढ़ी के रूप में है, ईश्वर है तो निराकार ही। अन्तिम लक्ष्य तो सभी का उस निराकार प्रभु की प्राप्ति ही है।' आदि

वेद को गड़रियों के गीत बताने वालों के मुँह पर ताले लग रहे हैं। वैदिक साम्यवाद के स्वर ऊँचे उठ रहे है। जन्म के आधार पर अब किसी को ऊँच-नीच बताना अपराध है। कर्म की प्रधानता को स्वीकार किया जारहा है। नारी का गौरव भारत की प्रधान मन्त्री के रूप में प्रतिष्ठित होकर चुका है तो कहीं ज्ञान-विज्ञान के विविध क्षेत्रों में नारी की स्पृहणीय उपलब्धियों के रूप में। मृतक भोज, मृतक श्राद्ध को सभी प्रबुद्ध जन हेय दृष्टि से देख रहे हैं। भाखड़ा बाँध जसी वैज्ञानिक प्रगतियों को 'तीर्थ' संज्ञा दी जारही है। समुद्र यात्रा अब तो कृष्ण हरे राम हरे वाले भी कर रहे हैं।

'शुद्धि' को पौराणिक पण्डित भी शास्त्र-सम्मत स्वीकार कर नत मस्तक हो रहे हैं। कोई उसे भारतीयकरण या राष्ट्रियकरण का नाम देकर उसकी अनिवार्यता को अनुभव कर रहे हैं। बाह्याचार को ढकोसला माना जारहा है। विज्ञान की अग्नि अन्धविश्वास के कूड़े को जला रही है। बाल विवाह मिट रहे हैं। बड़े २ नक्कू विधवा विवाह रचा रहे हैं। समाज के सभी जाग्रत तत्व दहेज ठहराव आदि विविध कुरीतियों पर वज्र-प्रहार करना चाहते हैं। मातृ भाषा हिन्दी देव भाषा संस्कृत और माता सी प्यारी गो माता की गौरव रक्षा एवं जीवन रक्षा के पुण्यकार्य भी अग्रसरित हैं।

पशु बलि को सभी एक स्वर से पाप मान रहे हैं। गोरक्षा के सन्दर्भ में श्री करपात्रीजी आदि भी ऋषिके वेद भाष्य का आश्रय लेने पर बाध्य हो रहे हैं 'नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय' वेदमाता की यह पुण्य उक्ति चरितार्थ होने जा रही है। मैं पूछना चाहूँगा कि क्या यह 'दयानन्द दिग्विजय' ही नहीं है ?

श्रद्धेय स्वामी धर्मानन्द जी ने इसी सच्चाई को **'दयानन्द दिग्विजय'** में संक्षेपतः उद्घाटित करने का सफल प्रयास किया है। इसके द्वारा यह सुस्पष्ट होगा कि सत्यार्थ प्रकाश आदि में महर्षि द्वारा की गई विभिन्न मतों की निष्पक्ष समालोचना द्वारा विश्वमानवता का कितना महोपकार हुआ है।

कई बार समालोचना के महत्व से अनभिज्ञ कुछ क्षुद्राशय जन महर्षि की इस समीक्षा के पीछे छिपे उनके मन के दर्द को न समझ, उन्हें 'असहिष्णु' बताने का पाप कर बैठते हैं। महर्षि का तप और बलिदान अपना कार्य कर रहा है। **'दयानन्द दिग्विजय'** तो होरही है, और होकर रहेगी। पर स्थिति यह है कि 'आत्म विजय' के अभाव में यह दिग्विजय दो कौड़ी की बनाकर रह गई है। मेरे मान्य विद्वानों मेरे मान्य नेताओ ! मेरे आर्य वीरो !! युग की पुकार है कि हम कृण्वन्तो विश्वमार्यम्' के लक्ष्य की प्राप्ति के लिये 'कृण्वन्तः स्वयमार्यम्' की व्रत-दीक्षा लें। हमें अपनी मति, गति और वृत्ति से सिद्ध करना है कि हम 'आर्य' हैं। हम देव दयानन्द के अनुयायी है, हम वेदमाता के उपासक हैं। इसके लिये हमें पारस्परिक ईर्ष्या-द्वेष और निजी स्वार्थों की बलि देकर 'दयानन्द दिग्विजय' की सच्ची सफलता के लिये आत्म 'विजय' का पावन व्रत लेना होगा। जिससे सारी धरती एक स्वर में कह सके— **"वैदिक धर्म की जय !"**

दिग्विजय गीतिका

ऋषिराज ! तेज तेरा चहुं ओर छा रहा है।
तेरे बताये पथ पर संसार आ रहा है॥
कह जंगली जनों के हा ! गीत, वेद छोड़े।
भण्डार ज्ञान का अब उनमें दिखा रहा है।
सिद्धान्त वेद के ही सब सिद्ध हो रहे हैं।
घर-घर दिखाता आनन्द आ रहा है॥
वेदोक्त धर्म का ही डङ्का बजेगा जग में।
संगीत 'सोम' स्वर से सबको सुना रहा है॥

प्रस्तावना—

ऋग्वेद में एक मन्त्र आता है जिसमें सत्य की गरिमा का तिपादन करते हुए बताया गया है कि—

ऋतस्य हि शुरुधः सन्तिपूर्वीर्ऋतस्य धीति र्वृजिनानि हन्ति ।
ऋतस्य श्लोको बधिरा ततर्द कर्णा बुधानः शुचमान आयोः ॥

—ऋ० ४-२३-८

इसका तात्पर्य यह है कि सत्य की शोक-विनाशक महिमा ही भारी है। सत्य का धारण सब पापों को नष्ट कर देता है। सत्य शब्द इतना अधिक प्रभावशाली होता है कि वह बधिर कर्णों तक पहुँच कर अपना प्रभाव उत्पन्न कर देता है।

जब हम वैदिक धर्मोद्धारक-शिरोमणि, आदर्श समाज सुधारक नाम धन्य महर्षि दयानन्द सरस्वती के अद्भुत कार्य और उसके भाव पर विचार करते हैं तो वेद के इस वचन की सत्यता स्पष्टतया त होने लगती है। वेद की ज्योति को जला कर महर्षि दयानन्द ने स्त जगत् को जो सार्वभौम सन्देश दिया तथा समस्त पाखण्ड का स निर्भयता से खण्डन सत्यार्थप्रकाश इत्यादि ग्रन्थों के द्वारा किया का यद्यपि प्रारम्भ में स्वार्थी वा अज्ञानी लोगों और मत-मतान्तरों पक्षपातग्रस्त व्यक्तियों ने बड़ा विरोध किया (और अब भी ऐसा रोध करने वाले थोड़ी-बहुत संख्या में देश-विदेश में पाये जाते हैं) देश-विदेश के विचारशील लोगों ने (जिनमें मत-मतान्तरों के क प्रचारक भी हैं) उनके युक्तियुक्त विचारों को ग्रहण करके पे अपने मन्तव्यों में धीरे २ परिवर्तन करना आरम्भ किया और की बुद्धिसङ्गत व्याख्या का प्रयत्न किया, इसे मैं संक्षेप से इस बन्ध में दिखाना चाहता हूँ। विचारशील निष्पक्ष विद्वान् स्वयं र्णय कर सकते हैं कि किस प्रकार पदे-पदे विरोधों के बीच भी दयानन्द की दिग्विजय का सुदिव्य पथ प्रशस्त होकर सत्य का जय रथ आगे बढ़ रहा है।

—स्वामी धर्मानन्द सरस्वती

१

पौराणिक विद्वानों पर प्रभाव

यह स्वाभाविक ही है कि महर्षि दयानन्द सरस्वती को अधिकतर शास्त्रार्थ पौराणिक विद्वानों से करने पड़े, जिनमें मूर्ति-पूजा विषयक् शास्त्रार्थों की संख्या जो काशी, हुगली आदि में हुए बहुत अधिक है। महर्षि दयानन्द ने—

"न तस्य प्रतिमा अस्ति यस्यनाम महद्यशः ॥—यजु० ३२·
स पर्य्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरं शुद्धमपापविद्धम् । कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूर्याथातथ्यतोऽर्थान्व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः
—यजु० ४०·

—आदि मन्त्रों के आधार पर सर्वत्र विद्वत्मण्डली के सम्मुख घोषणा की कि वेदों में परमेश्वर को सर्वथा निराकार, सर्वव्यापक और सर्वज्ञ बताया गया है और यह कहा गया है कि वह सर्वथा अजन्मा है, उसकी कोई प्रतिमा वा मूर्ति नहीं बन सकती। अतः अवतारवाद, मूर्तिपूजादि वेद विरुद्ध हैं। इसको वेद से सिद्ध करने के लिए उन्होंने काशी तथा अन्य स्थानों के सुप्रसिद्ध धुरन्धर विद्वानों—स्वामी विशुद्धानन्द, पं० बाल शास्त्री आदि को ललकारा, किन्तु उनमें से

ोई भी मूर्तिपूजा के लिये वेदों का एक भी प्रमाण न प्रस्तुत कर का। आज भी आर्य विद्वान् पौराणिक विद्वानों को खुला चैलेन्ज तिपूजा, अवतारवादादि को वेदों से सिद्ध करने के लिये देते हैं। ातन धर्माभिमानी पण्डितों पर इसका जो प्रभाव पड़ा उसे दिखाने लिये मैं निम्नलिखित प्र ाण देना पर्याप्त समझता हूँ।

(१) सनातन धर्म महामण्डल के प्रधान भारतभूषण महामना पं० मदनमोहन जी मालवीय ने लाहौर सनातन धर्म सभा के वार्षि- त्सव में व्याख्यान देते हुए अक्टू० १९१६ ई० में कहा था कि स विद्वन्मण्डली में क्या ऐसा कोई पण्डित है जो कि मुझे वेद-शास्त्र मूर्तिपूजा दिखलाये। हमारे धर्म में मूर्तिपूजा को आवश्यक नहीं ाया गया।"

दयानन्द दिग्विजय के पृष्ठ २२ में इस बात को पढ़ कर मैंने के लेखक श्री धर्ममित्र जी आर्य सेवक से पत्र लिखकर पूछा कि ननीय पं० मदनमोहन जी मालवीय ने यह बात कही इसका क्या ाण है ? इस पर श्री धर्ममित्र जी ने अपने ३-१२-६९ के पत्र में खा कि मैं स्वयम् उस उत्सव में सम्मिलित था जब पं० मालवीय ने ये शब्द कहे।

(२) भारत धर्म महामण्डल काशी नामक पौराणिक भाइयों सुप्रसिद्ध संस्था के प्रधान स्वामी दयानन्द सरस्वती बी० ए० ने नपुर में व्याख्यान देते हुए कहा था कि 'मूर्तिपूजा कुछ नहीं, लड़ाई ड़े की बातें हैं। सच्ची मूर्तिपूजा करा अर्थात् विराट् परमात्मा के ारी बनो, जिसको हम उसके गुणों के द्वारा ध्यान में ला सकते हैं।

(दयानन्द दिग्विजय पृ० २२ से उद्धृत)

(३) स्वामी विवेकानन्द जी का एक महत्वपूर्ण कथन—गत ाब्दी के सुप्रसिद्ध मनीषी अमेरिका तथा अन्य देशों में वेदान्त का ार करने वाले अत्यन्त तेजस्वी वक्ता स्वामी विवेकानन्द जी को र्तिपूजा का कट्टर समर्थक समझा जाता है और उनके कुछ वचनों

को हमारे पौराणिक भाई आदर के साथ उद्धृत करते हैं किन्तु उन
भी अपने 'ज्ञान योग के प्रवचन' पृ० ५६ में स्पष्ट लिखा है कि—भ
में प्रतिमाओं (मूर्तियों) का प्रारम्भ बुद्ध का एक वैयक्तिक ईश्व
विरुद्ध अनवरत प्रचार का परिणाम है। वेदों में प्रतिमाओं की
भी नहीं। (ज्ञानयोग प्रवचन पृ० ५६ से उद्धृत

(४) मैं स्वयं हैदराबाद (दक्षिण) के सनातन धर्म सभा
आर्यसमाज के मध्य हुए शास्त्रार्थ में उपस्थित था जब देहली से
हुए सुप्रसिद्ध षट् शास्त्री पौराणिक विद्वान् ने (जिनका नाम जहां
स्मरण है पं० यमुनाप्रसाद जी षट् शास्त्री था) यह घोषणा की थ
मूर्तिपूजा महापाप है। जो मूर्ति की पूजा करता है वह महापाप व
है। पर यह दिखाने का उन्होंने व्यर्थ प्रयास किया था कि हम सन
धर्मी मूर्ति की पूजा नहीं करते मूर्ति के द्वारा भगवान् की
करते हैं।

(५) इसी प्रसङ्ग में मैं उस शास्त्रार्थ का उल्लेख करना उ
समझता हूँ जो लगभग सन् १९३२ ई० में मेरा चन्द्रपट्ट (
राज्य) में पौराणिक विद्वान् श्री शिवमूर्ति शास्त्री से हुआ था
मैंने मेज पर चारों वेदों और उपनिषदों को रखकर उनको मूर्ति
समर्थक एक भी प्रमाण वेदों से दिखाने का चैलेञ्ज दिया तो उ
सरल भाव से सबके सामने कहा कि मैं वेदों का बहुत बड़ा
तो नहीं पर जहाँ तक उनका मैंने अध्ययन किया है तथा उप
का भी उनमें मुझे मूर्तिपूजा का समर्थक कोई प्रमाण नहीं मिला

मूर्तिपूजा और पुराण विषयक्

श्री रामतीर्थ जी दण्डी स्वामी (हरिद्वार) के विचार

श्री स्वामी रामतीर्थ जी दण्डी एक विचारशील संन्या
जो अपने को सनातनधर्मी कहते हैं और जिन्होंने 'शास्त्रीय धर्म
कर' 'मनुस्मृति आदि शास्त्रों का काल' इत्यादि कई पुस्तकें लि
प्रकाशित कराई हैं। 'मनुस्मृति आदि शास्त्रों का काल' नामक

में आपने पुराणों और मूर्तिपूजादि पर अपने विचार कुछ विस्तृत और स्पष्ट रूप में प्रकट किये हैं। पृ० ३३ से ३६ में उन्होंने लिखा है :—

यदि ये तन्त्र और पुराण न होते तो लोग मदिरा माँस के सेवन से बच जाते, क्योंकि तन्त्र और पुराणों ने महादेव और दुर्गा को भी मदिरा और माँस के भोगी बता दिया है।

"यदि तन्त्र और पुराण न होते तो आर्य हिन्दु जाति का एक ही ईश्वर बना रहना था, परन्तु इन्होंने शिव, शक्ति गणेश सूर्य और विष्णु इन पाँच देवताओं को ईश्वरता देकर और इनमें भी एक ईश्वर से दूसरे को महेश्वर बता दिया है। राम जी को और कृष्ण जी को उनसे भी अलग महेश्वर बताया है। जैसा कि मथुरा वालों का परमात्मा गोलोक निवासी कृष्ण जी हैं। अयोध्या वालों का परमात्मा साकेत लोक निवासी रामजी हैं। काशी वालों का ईश्वर कैलाश निवासी महादेव है और देवी के उपासकों का परमात्मा शक्ति लोक निवासिनी भगवती है। वैष्णवों का परमात्मा वैकुण्ठ निवासी विष्णु जी हैं। इस प्रकार पुराणों के ईश्वर भिन्न-भिन्न हैं।

इसी से मथुरा वृन्दावन के राधाकृष्ण मन्दिर में शिव, क्योंकि उसमें राधाकृष्ण को शिव की गोशाला की गौवों को चराने वाले ग्वाले बताया गया है और कृष्ण को शिवजी से पुत्र की कामना के लिये उसकी भक्ति करते हुए बताया गया है। काशी के शिव मन्दिर में ब्रह्मवैवर्त पुराण की कथा नहीं होने देते क्योंकि उसमें शिवजी को कृष्ण जी का दास बताया है। अयोध्या के राम मन्दिर में देवी भागवत की कथा नहीं होने देते, क्योंकि उसमें रामजी को देवी का भक्त बताया है और मदिरा मांस को शिव, शक्ति के प्रसन्न करने का सर्वोत्तम साधन बताया है किन्तु वैष्णव लोग इसके सर्वथा ही विरोधी हैं।

श्री रामानुजाचार्य आदि आचार्यों के अनुयायी वैष्णव लोग विष्णु मन्दिर में शिव पुराण की कथा नहीं होने देते, क्योंकि उसमें भागवत के अनुसार नृसिंह जी ने जिस प्रकार हिरण्य कश्यप का वध

किया है, ठीक उसी प्रकार शिवजी ने शरभ के रूप से नृसिंह का वध किया ऐसा लिखा हुआ है। ऐसे ही किसी भी शिव मन्दिर में विष्णु पुराण की कथा नहीं होने देते क्योंकि उसमें शिव को विष्णु जी का सर्वोत्तम सेवक बताया गया है।

शैव और शाक्त तन्त्रों के और पुराणों के अनुसार शिव, शक्ति के मन्दिरों में भैंस, बकरा और भेड़ आदि पशुओं की तथा कुक्कुड़ आदि पक्षियों की निर्मम हत्या शिव-शक्ति की प्रसन्नतार्थ की जाती है। उसके लहू या रुधिर को उनके उपासक लोग, डिबिया में डाल कर उसको आत्म कल्याण की भावना से प्रातःकाल माथे पर लगाते हैं किन्तु वैष्णव तन्त्रों और पुराणों के अनुसार; वैष्णव लोग ऐसे मन्दिरों को हत्यागृह मान कर उनमें जाना पाप मानते हैं।

शिवपुराण कोटिरुड संहिता ४ अध्याय १२ में 'शिव पार्वती, के सर्वथा ही अकथनीय अश्लील इतिहास उनके गुप्त अङ्गों की पूजा, पत्थर के लिङ्ग योनि के आकार में कल्पित करके वाममार्गियों ने प्रचलित की है।''

इसके पश्चात् शिव पुराण से शिवलिंग विषयक् अत्यन्त अश्लील कथा को श्लोक सहित उद्धृत किया गया है जिसे लेख विस्तार तथा अश्लीलता के भय से हम छोड़ रहे हैं और उसके अन्त में यह टिप्पणी दी है--

''वैष्णव लोग इस पूजा को महा विषयी, महा पामर और महा धूर्त पुरुषों द्वारा प्रचलित की हुई मान करके इस पूजा को मानव धर्म के विपरीत मानते हुए पतिव्रत धर्म के तो इस पूजा को सर्वथा विपरीत मानते हैं—''

वैष्णव लोग कार्तिक महात्म्य की कथा को नहीं सुनते, क्योंकि इसमें विष्णुभगवान् को अपने पति जालन्धर के साथ सती हो चुकी जो वृन्दा नाम वाली स्त्री है उसके वियोग में महाविषयी पुरुषों के समान महादुःखी और महादीन होकर रोता हुआ लिखा है। (पृ० ३६)

पुराणों के विषय में श्री दण्डी स्वामी रामतीर्थ ने स्पष्ट लिखा है कि 'पुराणों के परस्पर भेद के कारण ही शैव शाक्तों का और वैष्णवों का आपस में महा विद्वेष है। अतः ये तन्त्र और पुराण अनेक ईश्वरवाद के कारण बनकर महाक्लेश तथा महा अनर्थ के उत्पादक सिद्ध हुएहैं। इसीसे वे तन्त्र औरपुराणदूरदर्शी ऋषियोंसे प्रणीत नहींहैं किन्तु ये भिन्न२ सम्प्रदायों के लोगों ने ही कल्पित किये हैं इसीसे ये व्यथ सिद्ध हुए हैं।'

—मनुस्मृति आदि शास्त्रों का काल—श्री रामतीर्थ दण्डी स्वामी कृत(पृ० ३७)पाठक देखें दण्डी स्वामी रामतीर्थजी के ये विचार महर्षि दयानन्द जी के विचारों से स्पष्टतया प्रभावित हैं।

महर्षि के वेदाधिकार विषयक मन्तव्य का प्रभाव

अब मैं महर्षि दयानन्द द्वारा—'यथेमां वाचं कल्याणीमावदानिजनेभ्यः। ब्रह्मराजन्याभ्या्ँ शूद्राय चार्याय चारणाय च स्वाय य० २६।२

—इत्यादि मन्त्रों के आधार पर प्रतिपादित इस मन्तव्य का कि वेद पढ़ने का अधिकार शूद्रकुलोत्पन्न पुरुषों और स्त्रियों को भी है, जिनका मध्यकालीन आचार्यों 'श्री शङ्कराचार्य, रामानुजाचार्य, बल्लभाचार्य, (निम्बार्काचार्य आदि ने स्पष्ट निषेध किया था।) निष्पक्षपात पौराणिक विद्वानों पर जो प्रभाव पड़ा है उसके कुछ स्पष्ट उदाहरण प्रस्तुत करना चाहता हूँ।

१—मुलतान के सनातन धर्म कालेज के भू० पू० प्रधानाचार्य दिवंगत श्री प० चूड़ामणिजी शास्त्री ने भारतीय संस्कृति सम्मेलन काशी से प्रकाशित 'भारतीय धर्मशास्त्रम्' में लिखा था कि जो भी वेदाध्ययन को योग्यता प्राप्त करते जाएँ वे सभी उपनीत होकर वेदाध्ययन में प्रवृत्त होते जाए। वेद सबके लिये लौकिक और पारलौकिक सुख देने वाला है अतः वेदों पर प्रतिबन्ध लगाना कि इन को जन्म जात त्रैवर्णिक ही पढ़ सकते हैं अमौलिक है और अतःएव अप्रामामिक है।" इसके पश्चात् 'यथेमां वाचं कल्माणीमावदानिजनेभ्यः।' इस यजु० २६।२ के मन्त्र को उद्धृत करके (जिसको महर्षि

दयानन्द जी ने सत्यार्थप्रकाश तथा ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका में किया है) विद्वच्छिरोमणि प० चूड़ामणि जी शास्त्री ने लिखा—

"वेद में लिखा है कि जैसे मैं (ईश्वर) इस कल्याणी वाणी को सभी मनुष्यों के लिये अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र अपना और पराया सबके लिये कहता हूँ वैसे तुम भी सबको कहो। इस मन्त्र की आज्ञा से मनुष्य मात्र वेदाध्ययन का अधिकारी है।"

कहाँ तो हमारे पौराणिक विद्वान् भाई 'स्त्री शूद्रौ नाधीयाताम्' इसी कल्पित श्रुतिवचन की दुहाई देकर स्त्री और शूद्रमात्र के लिये वेदाध्ययन का निषेध करते थे और कहाँ सनातन धर्म कालेज के प्रधानाचार्य की वेद के अधिकार पर यह स्पष्ट घोषणा कि 'वेद मन्त्र की आज्ञा से मनुष्य मात्र वेदाध्ययन की अधिकारी है' स्पष्टतया महर्षि दयानन्द के निष्पक्ष पौराणिक विद्वानों पर प्रभाव 'ऋषि के जादू' को ही सूचित करने वाली है।

२—देहली में सनातन धर्म महामण्डल के प्रधान स्व० पं० गंगाप्रसाद जी शास्त्री ने 'अछूतोद्धार निर्णय' नामक एक अत्युत्तम पुस्तक लिखी थी जो सनातन धर्मपुस्तक भवन दिल्ली से प्रकाशित हुई थी। उसमें 'यथेमां वाचं कल्याणी०' (यजु० २६।२) इस मन्त्र के उव्वट, महीधर, पं० ज्वालाप्रसाद मिश्र इत्यादि कृतभाष्य का खण्डन करते हुए सनातन धर्म महामण्डल के प्रधान उक्त पं० जी ने लिखा—

हमारी सम्मति में (इस मन्त्र का अर्थ है कि) आचार्य अपने शिष्यों का वेदाध्ययन करता हुआ कहता है:—

हे शिष्यों ! जिस प्रकार मैं इस वेदवाणी को ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, मित्र और शत्रु सबके लिये कहता हूँ इसी प्रकार तुमभी इसको सब मनुष्यों को उपदेश किया करो।

(अछूतो० निर्णय पृ० ३२)

क्या सनातन धर्म कालेज के प्रधानाचार्य और सनातन धर्म महामण्डल देहली के प्रधान महोदय के शब्दों का पढ़कर यह कहावत याद नहीं आ जाती कि 'जादू वह जो सिर चढ़ कर बोले'

(३) काशी पण्डित सभा द्वारा पण्डितराज की उपाधि से म्मानित, रामानन्द सम्प्रदाय के महान् आचार्य सर्वतन्त्र स्वतन्त्र रिव्राजकाचार्य श्री स्वा० भगवदाचार्य जी ने सामवेद और यजुर्वेद ा संस्कृत में भाष्य किया है जिसमें सामवेद के—

कस्यनूनं परीणसि धियो जिन्वसि सत्पते । गोषाता यस्यते ारः ।। सामवेद ३८

इस मन्त्र का भाष्य करते हुए वे लिखते हैं :—

हे सत्पते ! सतां पूतमनसां पूतकर्मणां च पते स्वामिन् ! (अग्ने) रमात्मन् ! यस्य (ते) तव (गिरः) वेद वाचः (गोषातः) पृथिवी थतानां सर्वेषां मानवानां (सतौ लाभाय भवन्तीत्यर्थः । ेन परमेश्वरस्य वेदेषु सर्वेषामेव ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्रा-शूद्रादिविभेदविभक्तानां सत्प्रमाणाँ स्त्रीपुंसादि शरीरभृतां जीवानाँ मानोऽधिकार इति विस्पष्टं सूचितं भवति ।" साम संस्कार भाष्यम् ।

इसका संक्षिप्त भाषानुवाद करते हुए इस प्रकार लिखा है—

हे पवित्र मन वालों के, पवित्र वचन वालों के और पवित्र कर्म ालों के स्वामी परमेश्वर ! आपकी वेद रूपी वाणी पृथ्वी पर निवास रने वाले ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, अतिशूद्र सभी मनुष्यधारियों लाभ के लिए है । (साम संस्कार भाष्य पृ० ३२)

पण्डितराज स्वा० भगवदाचार्य जी ने न केवल कन्याओं और ्रयों का वेदाध्ययनाधिकार स्वीकार किया है अपितु यजुर्वेद अ० ४ , वें मन्त्र 'अनुत्वा माता मन्यताम् अनुपिताऽनुभ्राता सगर्भ्योऽनुसखा ूथ्यः ।' का भाष्य करते हुए जिसकी सायणाचार्य उव्वट, मही-ादि ने पशुहिंसा परक भ्रष्ट व्याख्या की थी, आपने लिखा है :—
्मचर्य व्रतपालनेच्छया गुरुकुलं प्रतिष्ठमानां ब्रह्मचारिणी प्रत्याह म्बन्धी कश्चित् त्वां माता अनुमन्यतां पिताऽनुमन्यताँ सगर्भ्यः सहो-ी भ्राताऽनुमन्यताम् ।'

अर्थात् 'ब्रह्मचर्य पालन की इच्छा से गुरुकुल को जाती हु ब्रह्मचारिणी को कोई सम्बन्धी कहता है कि तुम्हारी माता, पित भ्राता आदि इसकी तुम्हें सहर्ष अनुमति दें।' अन्य भी अनेक मन्त्रों आपने इसी प्रकार की व्याख्या की है जिससे कन्या गुरुकुल और उस वेदाध्ययन सिद्ध होता है।

(४) हरिद्वार के महामण्डलेश्वर निखिल निगमागम शास्त्र विख्यात स्वा० महेश्वरानन्द जी गिरि ने जनवरी १६६६ में प्रकाशि सामवेद संहितोपनिषद् की भूमिका में एक शीर्षक दिया है "सद्गुणा ढ्या: स्त्रियोऽपि ऋषयो बभूवुर्भवितुमर्हन्ति च" अर्थात् उत्तम गुणवत स्त्रियाँ भी ऋषिकाएँ हो चुकी हैं और हो सकती हैं।

ऋषिकाओं की एक लम्बी सूची देकर उन्होंने लिखा है—

अतो वेदाध्ययनं स्त्रीभिर्न कर्त्तव्या इति कस्यचित्कथनं वर्तमान प्रकाशसमये केवलमुपहासात्मेकमेव प्रतिभाति पक्षपातरहितान विदुषाम्।'

—महा मण्डलेश्वर स्वा० महेश्वरानन्द गिरि जी कृत सामवेद संहितोपनिषत् भूमिका पृ० ६५

अर्थात् वेदों का अध्ययन स्त्रियों को नहीं करना चाहिए य किसी का कथन पक्षपात रहित विद्वानों की दृष्टि में वर्तमान प्रकाश मय काल में उपहासजनक प्रतीत होता है। कितने स्पष्ट शब्दों यह महर्षि दयानन्द द्वारा प्रतिपादित उदार वैदिक सिद्धान्त का एक महामण्डलेश्वर महाविद्वान् द्वारा प्रबल समर्थन है, इसे पाठक महानुभाव देखें। यहाँ 'ऋषि का जादू' कितने प्रखर रूप में प्रकट है

महर्षि दयानन्द के प्रति महा मण्डलेश्वर स्वा० महेश्वरानन्द जी ने अपना हार्दिक भाव 'चातुर्वर्ण्य-भारत समीक्षा' नामक अपने विद्वत्ता पूर्ण संस्कृत ग्रन्थ के द्वितीय खण्ड में इन शब्दों में प्रकट किया है—

बहूनामनुग्रहोन्याय्य: समाज राष्ट्र रक्षक:।
महर्षि श्रीदयानन्दो, दम्भ पाखण्ड मर्दक: ।।१२८

वेद धर्म प्रचाराय, मर्दनाय विधर्मिणाम् ।
आर्याणां सङ्घ शक्तयर्थं प्रयासो येन वै वृतः ।।१२९
तस्य महानुभावस्य, सम्मतिश्चास्ति कृष्णवत् ।
गुणकर्मानुसारेण, चातुर्वर्ण्यव्यवस्थितिः ।।१३०

(प्रास्ताविकम् पृ० १५)

अर्थात् समाज और राष्ट्र के रक्षक, दम्भ और पाखण्ड के मर्दक महर्षि दयानन्द की भी जिन्होंने वैदिक धर्म के प्रचार, विधर्मियों के मानमर्दन और आर्यों की सङ्घ शक्ति की वृद्धि के लिये महान् प्रयत्न किया, वर्णव्यवस्था के विषय में यही सम्मति श्रीकृष्ण जी की तरह है कि गुणकर्म द्वारा वर्णाश्रम की व्यवस्था होती है। (इस विषय का संक्षेप में प्रतिपादन आगे किया जाएगा।)

इस प्रकार महर्षि दयानन्द का अनेक उच्च कोटि के पौराणिक विद्वानों पर प्रबल प्रभाव स्पष्ट है।

अवतारवाद की अवैदिकता सम्बन्धी विचार—

वेदों में अवतारवाद नहीं है।

अवतारवाद पौराणिक मत का (जिसे प्रायः सनातन धर्म के नाम से पुकारा जाता है) अत्यावश्यक वा अनिवार्य सिद्धान्त माना जाता है, जिसका महर्षि दयानन्द ने सत्यार्थ प्रकाशादि में प्रबल प्रमाणों और युक्तियों से खण्डन किया और उसे वेद विरुद्ध बतायाथा।

काशी के पं० अम्बिकाप्रसाद जी व्यास आदि कुछ पौराणिक विद्वानों ने अवतारवाद को वेदानुकूल सिद्ध करने का उपहासास्पद प्रयास किया था जैसे कि अब भी महामण्डलेश्वर प्रज्ञाचक्षु स्वा० गंगेश्वरानन्द जी आदि कुछ पौराणिक विद्वान् करने में संकोच नहीं कर रहे। किन्तु इस विषय में पण्डितराज यजुर्वेद सामवेद भाष्य-कार स्वा० भगवदाचार्य जी का सरलता पूर्ण वचन उल्लेखनीय है।

प्रतद्विष्णुस्तवते वीर्येण मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः। (यजु० ५। २०) के भाष्य में उन्होंने लिखा है :—

'इस मन्त्र में दिपालका अर्थ चरण तो नहीं है। इसी वेद
ईश्वर के सशरीर होने का निषेध किया है। पाद भी शरीरा
ही है। शरीरी अज तो कोई नहीं देखा गया है। यदि परमेश्वर शरी
होगा तो वह अनित्य होगा, नित्य नहीं 'अवतारों की कल्पना वैदि
काल में नहीं थी, यह निर्विवाद है। (स्वा० भगवदाचार्य जी
यजुर्वेद संस्कार भाष्य पृ० १३१-१३२)

आगे आप सरल हृदयता का प्रकाशन करते हुए लिखते हैं:-क
का सारांश यह है कि यह नितान्त सत्य है कि वैदिककाल में अवत
कल्पना नहीं थी। मैंने अपने ग्रन्थों में जहाँ तहाँ अवतार सिद्धि
है। वेदों से ही रामावतार की सिद्धि की है पर वह तो केवल साम्प्रद
यिकता का रक्षण मात्र है। नीलकण्ठ ने ऋग्वेद के मन्त्रों से रामा
अवतारों की सिद्धि की है। वह भी वैदुष्य-प्रदर्शन मात्र है। मैंने
वाल्मीकि संहिता की टिप्पणी में रामानन्द स्वामी के अवतार
सिद्धि वेद मन्त्र से भी है। वह भी वैदुष्य प्रदर्शन मात्र ही है।

(यजु० संस्कार भाष्य पृ० १३४)

मान्य स्वा० भगवदाचार्य जी अब लगभग १०२ वर्ष के
उनकी नई पुस्तक 'श्री वाल्मीकि रामायण का स्वाध्याय' अभी निक
है, जिसमें उन्होंने लिखा है कि— "विष्णु तो 'वेवेष्टि निखिलं जगत्
जगत् में सर्वव्यापक है। व्यापक का कहीं आना जाना बन न
सकता। अतः यदि उसी विष्णु देव (देवता विशेष) के अवतार
है वह तो ब्रह्म कोटि का स्पर्श भी नहीं कर सकते। यदि सर्वव्याप
त्रिलोकीनाथ परब्रह्मस्वरूप विष्णु का अवतार राम माने जाए
आर्य जाति का ब्रह्म लङ्का में मार खाता है। छोटा ब्रह्म लक्ष्मण
मेघनाद के पाले पड़ जाता है। ब्रह्म के साथ खेल खेलकर कर हि
जाति ने अपने ब्रह्म को दूषित किया है भूषित नहीं किया।"

(श्री वाल्मीकि रामायण का स्वाध्याय स्वा० भगवदाचार्य
कृत पृ० १०) पौराणिक अवतारवाद का यह ऐसा प्रशस्त और सुस
खण्डन है कि इस पर टिप्पणी अनावश्यक है।

वर्ण व्यवस्था [illegible]

महर्षि दयानन्द ने सत्यार्थ[illegible]दि भाष्य भूमिका तथा अन्य ग्रन्थों में वर्ण व्यवस्था को वेद शास्त्रों के आधार पर गुण-कर्मानुसार माना है। पौराणिक विद्वानों का कथन था कि वर्ण-व्यवस्था जन्म से होती है, गुण कर्म से नहीं। इस विषय पर आर्य विद्वानों और पौराणिक पण्डितों के अनेक शास्त्रार्थ हुए जिनमें गुरुकुल काँगड़ी के सुयोग्य स्नातक और अन्त में उपकुलपति श्री पं० इन्द्र जी विद्यावाचस्पति का ऋषिकुल हरिद्वार के आचार्य महामहोपाध्याय गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी के साथ वर्ण व्यवस्था विषयक् शास्त्रार्थ जो गुरुकुल कागड़ी के वार्षिकोत्सव पर सन् १९१५ में हुआ, अत्यन्त प्रसिद्ध है।

उसके पश्चात् पौराणिक विचारशील विद्वानों के विचारों में भी धीरे २ परिवर्तन आया और उनमें से अनेक ने जिनमें महामण्डलेश्वर स्वा० महेशानन्द जी गिरि, सनातन धर्म कालेज के भू० पू० प्रधानाचार्य स्वा० विज्ञान भिक्षुजी (पं० चूड़ामणि जी शास्त्री शाण्डिल्य) दण्डी स्वामी रामतीथ जी हरिद्वार आदि के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं, जिन्होंने 'चातुर्वर्ण्य भारत समीक्षा' (स्वा० महेश्वरानन्द जी गिरि कृत) भारतीय धर्मशास्त्रम् (आचार्य चूड़ामणिजी शास्त्री कृत) शास्त्रीय धर्म दिवाकर (दण्डी स्वामी रामतीर्थ जी कृत) इत्यादि में गुणकर्मानुसार वर्ण व्यवस्था का शास्त्रों के आधार पर प्रबल समर्थन किया है।

महामण्डलेश्वर स्वा० महेश्वरानन्द जी गिरि ने 'चातुर्वर्ण्य भारत समीक्षा' नामक पुस्तक तीन खण्डों में संस्कृत में लिखी। पहले खण्ड में जन्मानुसार वर्ण व्यवस्था, जन्म और गुण कर्म दोनों पर आश्रित वर्ण व्यवस्था तथा केवल गुण कर्मानुसार वर्ण व्यवस्था सब पक्ष दिखाये गये थे। अपना पक्ष उन्होंने स्पष्टरूप से नहीं दिखाया था। मिलने पर मैंने उनसे निवेदन किया कि यद्यपि पुस्तक के ध्यान पूर्वक

पढ़ने से मुझे स्पष्ट ज्ञात होता है कि आपका अपना विचार गुण कर्मानुसार वर्ण व्यवस्था का है जिसका आपने प्रबल शास्त्रीय प्रमाणों से (महाभारत, गीता, पुराणादि) से समर्थन किया है तथापि आपने अपना पक्ष स्पष्ट रूप से नहीं बताया। आप जैसे महा विद्वान् संन्यासी को निर्भय होकर अपना पक्ष जनता के सम्मुख रखना चाहिए। मैंने अपनी भारतीय समाजशास्त्र, आर्य धर्म निबन्ध माला आदि पुस्तकें भी उन्हें भेट कीं, जिसका परमेश्वर की कृपा से यथेष्ट परिणाम हुआ और द्वितीय खण्ड में उन्होंने—

उत्तमाधम वैराग्यं, जन्मजाति निबन्धनम्।
स्वार्थ रक्षकं ग्राह्यं, घृणा गर्वादि पोषकम्॥
भगवत्कृष्णतः प्रोक्तं, गुण कर्म निबन्धन जन्म्॥
प्रास्ताविकम् श्लोक १७३।१७४ पृ० २०

—इत्यादि श्लोकों द्वारा जन्ममूलक जाति भेद को घृणा और अभिमानादि का पोषक और भगवान् कृष्ण द्वारा प्रोक्त गुणकर्मानुसार वर्ण व्यवस्था को उपादेय बताया। इस बीच में उनके पर्याप्त सम्पर्क में रहा। अतः तृतीय खण्ड में तो उन्होंने जन्ममूलक जाति भेद को न केवल हानिकारक अपितु हिन्दू जाति के क्षय रोग का मूल कारण ठहराया।

'हिन्दू क्षयरोग कारणान्वेषणम्' शीर्षक के नीचे:—
हिन्दु प्रक्षयरोगस्य, निदानं क्रियते बुधैः।
समाज राष्ट्रयोः श्रेयः—समिच्छद्भिर्महोदयैः॥१
गुण कर्मविहीनोयः, जन्मवर्ण दुराग्रहः।
तदेव कारणं सत्यं, वैषम्यविष वर्धकम्॥ २
हिन्दूनां च सतो विद्यात्, क्षयव्याधिनिवृत्तये।
कर्मणा वर्ण इत्येषः, मन्त्र एक प्रभुर्महान्॥ ११
(चातुर्वर्ण्य भारत समीक्षा खण्ड ३)

—इत्यादि स्वनिर्मित श्लोकों के द्वारा उक्त स्वामीजी ने बताया है कि गुण कर्मरहित जन्म से वर्ण का जो दुराग्रह है वही विषमता के विष को बढ़ाने वाला, हिन्दू जाति के इस क्षय का मूल कारण है। अतः हिन्दुओं को इस क्षय रोग की निवृत्ति के लिये कर्म से वर्ण होता है यही महान् मन्त्र ग्रहण करना चाहिये।

अस्पृश्यता निवारण तथा दलितोद्धार

महर्षि दयानन्द सरस्वती ने गुण कर्म स्वभावानुसार वर्ण-व्यवस्था का प्रतिपादन करते हुए अस्पृश्यता पर तीव्र प्रहार किया था यहाँतक कि महात्मा गान्धीजी ने महर्षि दयानन्द को श्रद्धाञ्जलि भेंट करते हुए सन् १९३३ ई० में लिखाथा —

Among the many legacies that Swami Dayand has left to us his un-equivocal pronouncement against untouchability is undoub tedly one. 7-5-33 Yeruada Prision poona.

अर्थात् स्वामी दयानन्द ने उत्तराधिकार के रूप में जो महत्व पूर्ण अनेक चीजें हमारे लिये छोड़ा हैं अस्पृश्यता के विरुद्ध उनकी स्पष्ट घोषणा निस्सन्देह उनमें से एक है। अस्पृश्यता निवारण और दलितोद्धार के कारण आर्यसमाज के कार्य-कर्त्ताओं को प्रारम्भ में बड़े २ कष्ट उठाने पड़े, बहुत जगह उनको जाति बिरादरी से निकाल दिया गया, उनका सामाजिक बहिष्कार पौराणिक भाइयों ने किया, किन्तु बाद में धीरे २ विचार शील पौराणिक विद्वानों और नेताओं के विचारों में परिवर्तन आया। लोक मान्य तिलक ने सन् १९१८ में महाराज बड़ौदा की अध्यक्षता में आयोजित 'दलितोद्धार सम्मेलन (Depressed mission Conference) में भाषण करते हुए स्पष्ट घोषणा की कि—

"It is a sin against God to say that a person is un-touchable who is not so to God Himself, and if a god were to tolerate un-touchabilty, I would not recognise him as god at all".

अर्थात् किसी को भी अस्पृश्य कहना जो परमेश्वर की दृष्टि में ऐसा नहीं, परमेश्वर के विरुद्ध बड़ा पाप है । यदि कोई देवता अस्पृश्यता को सहन करे तो मैं उसे देवता भी मानने को तैयार नहीं ।

उसी भाषण में उन्होंने यह भी कहा कि—'हिन्दुओं के धर्मशास्त्र इसकी कहीं पुष्टि नहीं करते कि किसी मनुष्य श्रेणी के साथ अछूतों का सा व्यवहार किया जाये । अपने भाइयों को अछूत मानना परमात्मा की आज्ञा तोड़ना है ।" इत्यादि—

(देखो Report of the Depressed class mission conference held in 1918 at Bombay under the presidency of the Maharaja of Baroda.)

कोट अद्दू जिला मुलतान) के कांग्रेस सेक्रेटरी ने सनातन धर्म सभा के प्रधान श्री पं० मदनमोहन जी मालवीय को एक पत्र लिखकर (१५ ज्येष्ठ संवत् १६७६ सन् १६२२) पूछा कि क्या एक साफ सुथरे भंगी के साथ छूना चाहिए या नहीं ? इसके उत्तर में महामना मालवीय जी की अनुमति से पण्डित परसराम शर्मा जी ने जो कोहनरो में उनके साथ रहते थे, यह पत्र लिखा "यदि भङ्गी का काम करने वाला साफ और सुथरा हो, उसके साथ छूने में कोई आपत्ति नहीं । उसे साफ सुथरा रखने के लिए उपदेश करना चाहिए और स्कूलों में जगह देनी चाहिए । ('प्रकाश' १५ ज्येष्ठ संवत् १६७६)

पीछे से महामना मालवीय जी के नेतृत्व में जो अस्पृश्यता निवारण विषयक कार्य हुआ वह सर्व विदित है। कलकत्ता की सनातन धर्म विद्वत् समिति ने इस विषय में निम्न महत्वपूर्ण घोषणा की—'हिन्दू जाति के किसी भी प्राणी को जन्म के कारण नीच न ख्याल करो । जो हिन्दू किसी को अछूत वा नीच समझता है वह गो हत्या का पाप करता है । हिन्दू धर्मशास्त्र किसी को अछूत नहीं मानते । स्मरण रखो कि हिन्दुओं की छूतछात से एक भी अछूत विधर्मी हो हो जाये तो यह गाय के वध का पाप करेगा और उसके कारण हम होंगे । यदि मन्दिरों में जाने से कोई रोकता है तो तुम लोग सत्याग्रह

कर दो। हिन्दू जनता साथ देगी। जो लोग तुम्हारे अधिकार देने में रुकावट डालते हैं, तुम उनके साथ असहयोग करो और उनके घरों पर किसी प्रकार का काम (मेहनत मजदूरी मत करो।"

(दयानन्द दिग्विजय—श्री धर्ममित्र कृत पृष्ठ ३६ उद्धृत)

भारतीय संविधान और विधि में अस्पृश्यता को अवैध अपराध घोषित किया जाना महर्षि दयानन्द और आर्यसमाज की विजय का द्योतक है, पर अभी सर्व साधारण हिन्दुओं की मनोवृत्ति को बदलने के लिए बड़े भारी प्रयत्न की आवश्यकता है।

शुद्धि आन्दोलन का प्रभाव

शुद्धि के विषय में स्वर्गीय महामना पं० मदनमोहन जी मालवीय, गोस्वामी गणेशदत्त जी आदि सनातन धर्म सभा के नेताओं ने अमर धर्मवीर स्वा० श्रद्धानन्द जी महाराज, ला० लाजपतराय जी आदि आर्य नेताओं के साथ कन्धे के साथ कन्धा मिलाकर किस प्रकार कार्य किया यह सर्वविदित है, अतः उसके विषय में यहाँ लिखने की आवश्यकता नहीं। आज हिन्दू विश्व परिषद् ने शुद्धि के द्वार खोल दिये हैं। प्रायः सभी शङ्कराचार्य भी शुद्धि का समर्थन करते हैं। स्पष्ट ही यह ऋषि दयानन्द और आर्यसमाज की महान् विजय है।

पुराणों की प्रामाणिकता तथा प्रक्षेपादि

महर्षि दयानन्द ने पुराणों की वेद-विरुद्धता, बुद्धि-विरुद्धता तथा परस्पर-विरुद्धता का सत्यार्थप्रकाशादि में प्रतिपादन किया था। सनातन धर्माभिमानी पौराणिक विद्वान् पुराणों की प्रामाणिकता का बड़ा ढिंढोरा पीटा करते थे पर इस बात के स्पष्ट प्रमाण हैं कि इस विषय में भी विचारशील पौराणिक विद्वानों पर महर्षि दयानन्द के लेख का पर्याप्त प्रभाव पड़ा है। भारत धर्म महामण्डल काशी के प्रधान स्वा० दयानन्द बी० ए० ने 'सत्यार्थविवेक' में लिखा—"पुराणों के भी बहुत से ग्रन्थ लुप्त हो गये हैं और बहुत स्थानों पर प्रक्षिप्त अंश भी आगये हैं।"

आजकल पुराणों की भूलों को अर्थ परिवर्तन और मिलाव की ओट में छुपाया जा रहा है। कृष्ण जी की चीरहरण-लीला विषय में कहा जाता है कि कृष्णरूपी परमात्मा जीव (आत्मा) रू गोपियों का यमुना रूपी भवसागर में विषय रूप नग्नावस्था में दे कर ज्ञानरूपी चीरों को छीन लेते हैं और जब जीवात्मा इस भवसाग से पार होना चाहता है तो ज्ञान के लिए प्रार्थना करता है, इत्यादि (पृ० २६)

'दयानन्द तिमिर भास्कर' के लेखक कट्टर पौराणिक पं ज्वालाप्रसाद मिश्र को भी 'अष्टादश पुराण दर्पण' में पुराणों क समीक्षा करते हुए लिखना पड़ा कि "पुराणों में बहुत सी अशुद्धिय हैं। अतः पुराणों में से ऐसी अशुद्धियाँ दूर करनी चाहिए।" सनातन धर्मियों के अपने समय में सर्वमान्य नेता महामना पं० मदनमोहन ज ने काशी की एक सभा में व्याख्यान देते हुए कहा था—"सनातन ध यदि जीवित रहना चाहता है तो उसे पुराणों का संशोधन करन चाहिये।"

रोपड़ (जिला अम्बाला) में सनातन धर्म कुमार सभा ने अप वार्षिकोत्सव पर १, २, ३, सित० १६१६ ई० के अवसर पर शास्त्रा के लिये चुनौती दी। आर्यकुमार सभा ने विषय निश्चित किया 'क्या पुराण वैसे ही स्वतः प्रमाण हैं जैसे कि वेद?' सनातन धर्म सभ ने उत्तर दिया कि "**हम सिवाय वेदों के किसी और ग्रन्थ को स्वत प्रमाण नहीं मानते।**"

ऋषिकुल हरिद्वार के मासिक-पत्र 'ब्रह्मचारी' ने लिखा था—

"पुराणों के जितने वाक्य वेदानुकूल हैं वे सर्वथा मान्य हैं औ '**जो वेद के प्रतिकूल हैं वे सर्वथा अग्राह्य हैं।**'

क्या इस प्रकार के विचारों पर महर्षि दयानन्द और आर्य समाज की स्पष्ट छाप नहीं है? इसी प्रकार बाल विवाह, वृद्ध विवा और अनमेल विवाहों के समर्थन, स्त्री शिक्षा निषेध तथा विधव विवाह विरोध के लिये आज कोई विचारशील पौराणिक विद्वा

तैयार नहीं होगा। वेद भाष्य की ऋषि निर्दिष्ट शैली के महत्व को भी अब पौराणिक विद्वान् अन्तर्हृदय से अनुभव करते जाते हैं और इस प्रकार महर्षि दयानन्द के जादू के समक्ष नत मस्तक हो रहे हैं।

विस्तार भय से अन्य विषयों को छोड़ते हुए मैं इस प्रकरण को यहीं समाप्त करता हूँ और पारसी मत, बौद्ध मत, जैन मत, ईसाई मत एवं इस्लाम के विद्वानों पर महर्षि दयानन्द के प्रभाव का संक्षेप से निरूपण करना चाहता हूँ। * *

२

पारसी मत पर प्रभाव

एक पारसी लेखक खुर्शीद जी अपनी पुस्तक 'Zororstrianism' में लिखते हैं—

"Pure Vedism aud Pure Zoroastrianism are one. Zoroastrianism sprang up as a roformatory revolution against the Corruptions and the superstitions which had obscured the primitive Vedic truths.'

अर्थात् पवित्र वैदिक धर्म और पवित्र पारसी धर्म एक ही हैं। पारसी मत बिगड़ी हुई वैदिक शिक्षाओं का सुधार रूप है। पारसी विद्वान् फर्दून दादाचान् जी B. A. LL. B, p. Th. ने वेदों के विषय में जो विचार 'Philosophy of Zoroastrianism & Comparative rising of Religions.' नामक ग्रन्थ में प्रस्तुत किये हैं उन पर महर्षि दयानन्द के विचारों की छाप बहुत स्पष्ट दिखाई देती है। वेदों की महिमा का गान करते हुए उन्होंने लिखा है—

'The Veda is a book of knowledge and wisdom, Comprising the Book of natute, the Book hf Religion, the Book of prayers, the Book of morals aud so on. The word 'Veda' means wit, wisdom, knowledge and truly the Veda is Condensed wit, wisdom and knowledge.

(Philosophy of Zoroastrianism by Dada chanji p. 100)

अर्थात् वेद ज्ञान की पुस्तक है जिसमें प्रकृति, धर्म, प्रार्थना सदाचार इत्यादि विषयक् पुस्तकें सम्मिलित हैं। वेद का अर्थ ज्ञान और वास्तव में वेद में सारे ज्ञान-विज्ञान का तत्व है। ऋग्वेद प्रथम अग्नि तत्व विषयक् सूक्त का अर्थ देते हुए जिसमें महर्षि दयानन्द के समान अग्नि शब्द के भौतिक अग्नि और ईश्वर दोनों अर्थ किये गये हैं, ये पारसी विद्वान् लिखते हैं—

"Thus we see that Agni in this hymn means both the fire as well as God."

वैदिक ईश्वरवाद पर प्रकाश डालते हुए वे स्पष्ट कहते हैं। The Vedas teach nothing but monitheism of the purest kind अर्थात् वेद विशुद्ध रूप में एकेश्वरवाद की शिक्षा देते हैं।

३

जैन मत पर प्रभाव

जैन मतानुयायी विचारशील विद्वानों पर भी महर्षि दयानन्द की सत्यार्थप्रकाश में की गई आलोचना का बड़ा प्रभाव पड़ा है। जैन ग्रन्थों में जैन मत के अतिरिक्त अन्य मत रखने वालों को पाप-शास्त्रीय जीवी, कर्मचाण्डाल आदि कह कर यहाँ तक लिखा गया था कि "पार्थिवैर्दण्डनीयाश्च, लुण्ठकाः पाप पण्डिताः ।१३६। मलिना चरिताह्य ते, कृष्णवर्गे द्विजब्रुवाः । जैनास्यु निर्मलाचारा, शुक्लवर्गे मताबुधैः ।। (दिगम्बर जैन महापुराण श्लोक १३८)

राजा ऐसे लुटेरे और पाप में पण्डितों को दण्ड दें। ये द्विज लोग मलिन आचार का पालन करते और झूठमूठ ही अपने को द्विज कहते हैं। इसलिये विद्वान् लोग इन्हें कृष्णवर्ग अर्थात् पापियों के समूह में गर्भित करते हैं और जैन लोग निर्मल चरित्र का पालन करते हैं इसलिए शुक्लवर्ग अर्थात् पुण्यवानों के समूह में शामिल किये जाते हैं।

'चर्चा समाधान' नामक जैनियों के ग्रन्थ में पृ० १२० पर निम्न श्लोक उद्धृत किया गया है जो जैनियों की अन्य धर्मावलम्बियों के लिए असहिष्णुता और घृणा को सूचित करता है :—

यो जैन सत्काव्य रसानभिज्ञः, सोऽयं पशुः पुच्छ विषाणहीनः।
चरत्यसौ यन्न तृणं कदाचित्, तद् भागधेयं परमं पशूनाम् ॥

(चर्चा समाधान पृ० १२०)

अर्थात् जो जैनों के उत्तम काव्यों के रस का अनभिज्ञ है, वह पुच्छ और शृङ्ग से रहित पशु है। तात्पर्य यह है कि जैन ग्रन्थ उत्तम और अजैन ग्रन्थ घास-फूस। जो अजैन ग्रन्थ पढ़ता है वह पशु है।

किन्तु अब जैन मत के तेरा पन्थ सम्प्रदाय के आचार्य तुलसी जी के शिष्य सुशीलकुमार जी जैन इत्यादि स्थान-स्थान पर 'सर्व धर्म सम्मेलन' करते कराते हैं और इस बात का भी प्रचार करते हैं कि सब धर्मों में अनेक अच्छी बातें हैं, जिनको ग्रहण कर लेना चाहिए यह महर्षि दयानन्द कृत समीक्षा का ही सुपरिणाम है।

महर्षि दयानन्द ने सत्यार्थप्रकाश के द्वादश समुल्लास में जैन मत की नास्तिकता का प्रबल खण्डन किया है। उसके परिणामस्वरूप अब जैन विद्वान् नास्तिकत्व से इन्कार करते हैं। मुनि श्री सुशील-कुमार जी जैन ने लगभग सन् १९५५ में इन्दौर में 'सर्व धर्म सम्मेलन' के अवसर पर जहाँ मैं वैदिक धर्म प्रतिनिधि के रूप में सम्मिलित था, कहा था कि आप लोग हमें नास्तिक कहते हैं पर हम तो 'ओ३म्' को मानते और उसका पवित्र शब्द के रूप में उच्चारण करते हैं"

महर्षि दयानन्द ने अपनी समीक्षा के द्वारा जो विवेक विद्वानों में उत्पन्न कर दिया उसको लेकर उनके विद्वान् अब तक मान्य रूप से स्वीकृत ग्रन्थों ('सूर्यप्रकाश' इत्यादि के विषय में) निम्न समालोचना करने लगे हैं :—

धर्म के नाम पर अनेक जैन लेखक बड़े से बड़ा पाप करने में भी पीछे नहीं रहे हैं,यहाँ तक कि उन्होंने मनमाने ग्रन्थ बना कर उनके रचयिता भद्रबाहु श्रुतदेव जी, उमा स्वामी जी, जिनसेन जी आदि को बना दिया है और इस प्रकार जनता की आँखों में धूल फेंकने की असफल चेष्टा की है। (पृ० ९-१०) आगे इसी समीक्षा में लिखा है 'यह खेद और लज्जा की बात है कि 'सूर्य प्रकाश' सरीखे भ्रष्ट ग्रन्थों

के प्रचारक ऐसे लोग हैं जिन्हें कि बहुत से लोग भ्रमवश विद्वान् और मुनि समझते हैं।" (पृ० १५)

इसी समीक्षा में आगे लिखा है कि "आर्यसमाज के शास्त्रार्थों तक में कुछ जैन पण्डितों को यह घोषित कर देना पड़ा है कि हम इन त्रिवर्णाचार जैसे ग्रन्थों को प्रमाण नहीं मानते। (पृ० ३)

एक जैन नेता ने आर्यसमाज के विषय में अपने विचार गुजराती में प्रकट किये थे जिनका हिन्दी अनुवाद स्व० मास्टर आत्माराम जी अमृतसरी ने 'सत्य धर्म-प्रचारक' के ऋष्यङ्क में प्रकाशित कराया था। उसमें उन्होंने लिखा था कि 'आर्यसमाज में जो हिन्दुओं के बढ़े हुए व्यसनों और भ्रममूलक बातों के सहन करने का भाव नहीं, यह हिन्दू वर्ग के लिये शुभ चिह्न समझो। इसकी यह स्वाभाविक असहिष्णुता ही हिन्दू समाज को जगाने वाली है। इसके लिए आर्यसमाज का जितना भी उपकार मानें थोड़ा है। इसके इस भाव में स्वार्थ का गन्ध नहीं। आर्यसमाज एक समाज के तौर पर कटुवचन कहने वाली संस्था नहीं।" यहीं इस प्रसङ्ग को समाप्त करता हूँ। *

बौद्ध मत पर प्रभाव

बौद्धमत के विद्वानों पर महर्षि दयानन्द और आर्यसमाज का कितना प्रभाव पड़ा है, इसके लिये दो उदाहरण ही पर्याप्त होंगे। (१) बौद्धमत के सुप्रख्यात भिक्षु धर्मपाल जी ने 'वैदिक मेगजीन' में श्रावण संवत् १९७१ (१९१४ ई०) में एक लेख में लिखा था कि—

The holy veda knowledge disappears with the grow th of the spirit of lust in the mind of the Brahmans. With the disappearance of the prychic know ledge due to the birth of lust and convetiousness the Brahmans, it is said in the Buddhist texts, distorted the spiritual meaning of the Vedas and introduced purushmedha Ashua-medh, Go medha and other unhuman sacrifices.

अर्थात् पवित्र वैदिक ज्ञान ब्राह्मणों के दिलों में भोगवाद का विचार आने से लुप्त हो जाता है। आध्यात्मिक ज्ञान के लोप होने से जिसका कारण भी ब्राह्मणों के दिलों में भोगवाद और लोभ काजन्म था —जसा कि बौद्ध शास्त्रों में कहा गया है—ब्राह्मणों ने वेदों के आध्यात्मिक अर्थ को बिगाड़ दिया और पुरुषमेध, अश्वमेध, गोमेधादि अमानुषिक यज्ञों को शुरू कर दिया, इत्यादि।

(२) सन् १९५७ में जब मेरी अंग्रेजी पुस्तक 'Mahatma Buddha an Arya Rcformer: was he an athiest?' प्रथम बार प्रकाशित हुई तो उस समय बौद्धमत और पाली साहित्य के भारत के

सबसे प्रसिद्ध और प्रामाणिक विद्वान् प्रो० एन० के० भागवत एम० ए० जो लगभग ३७ वर्षों से सेण्ट जेवियर कॉलेज,बम्बई में पाली विभाग के अध्यक्ष थे, अत्यधिक प्रभावित हुए और उन्होंने अपने पाक्षिक पत्र 'धम चक्र' के नव० १९५७ ई० के अंक में उसकी प्रशंसात्मक आलोचना करते हुए लिखा—"The chapter seventh deals with Buddha's idea of God and his position has been substantiated by Tagore, Mahatma Gandhi and others. The chapter should put a stop to the wrong-nation of Buddha bein. a God-less and soul-less. Chapter seventh shows Budbha,s attitude towards the Vedas and testifies to his belief in the Vedas (Dharma chakra edited by prof. N. K. Bhagvat M. A.)

अर्थात् सप्तम अध्याय में बुद्ध के ईश्वर विषयक् विचारों पर प्रकाश डाला गया है। और उसके उपयोगी उद्धरणों से उसे परिपुष्ट किया गया है। उससे बुद्ध के ईश्वर और आत्मा को न मानने वाले अथवा नास्तिक माने जाने की भ्रान्ति का सर्वथा अन्त हो जाना चाहिए। सप्तम अध्याय में महात्मा बुद्ध के वेद विषयक् विचारों को दिखाते हुए उनके वेद में विश्वास को प्रमाणित किया गया है।

प्रकट है कि किस प्रकार बौद्धमत के विद्वान् वेद और वैदिक ईश्वरवाद की ओर उन्मुख हो रहे हैं। ※

नित्य कर्म विधिः

—सम्पादक ईश्वरीप्रसाद 'प्रेम'। कहना न होगा कि दैनिक उपासना सम्बन्धी रचनाओं में यह पुस्तक सर्वोपयोगी सिद्ध हुई है। स्वल्प समय में इस ग्रन्थ के १२ संस्करण स्वयं इसकी उपयोगिता बताते हैं। पृष्ठ १७२ मू० प्रचारार्थ २) २० मात्र।

ईसाई मत पर प्रभाव

ईसाई मत की युक्तियुक्त समालोचना ऋषि दयानन्द ने सत्यार्थ प्रकाश के १३ वें समुल्लास में कीहै। उसका विचारशील ईसाइयों पर बड़ा व्यापक प्रभाव पड़ा है, फलतः उन्होंने ईसाई मन्तव्यों की नई व्याख्यायें प्रारम्भ की हैं।

१—स्वा० सर्वदानन्द जी महाराज आर्य जगत् के अपने समय के सर्वोच्च संन्यासी थे। एक बार रेल में यात्रा करते हुए उन्होंने एक ईसाई पादरी से पूछा कि पैदायश की किताब में लिखा है कि सूरज चौथे दिन पैदा हुआ। जब सूरज ही नहीं था तो पहले तीन दिनों का ज्ञान केसे हुआ ? इस पर उसने उत्तर दिया कि 'चौथे दिन से मतलब चौथे दर्जे का है। अर्थात् पहले ईश्वर, दूसरे आकाश, तीसरे हवा और चौथे सूरज। स्वामीजी ने पूछा कि यह व्याख्या कहाँ से सूझी ? पादरी ने उत्तर दिया कि जिसने आपको क्यों (?) कहना सिखाया, उसीसे हमने सीखा।

(२) ईसाई मत विषयक पक्ष-विपक्ष के साहित्य का इस निबन्ध के लेखक ने गत ५५ वर्षों से विशेष रूप से अध्ययन करके 'Vedic Dharma & Christianity' नामक पुस्तक ८२५ पृष्ठों में लिखी थी जिसका कुछ भाग ही 'Christianity and the Vedas' इस नाम से 'जनज्ञान' करौल बाग, नई दिल्ली से प्रथम अङ्क के रूप में प्रकाशित हुआ है। मेरा विश्वास है कि महर्षि दयानन्दजी की युक्तियुक्त आलोचना का विचारशील ईसाइयों पर पर्याप्त प्रभाव हुआ है और उन्होंने अनेक अशुद्ध मन्तव्यों को मानना या तो छोड़ दिया है या उनकी नई २ युक्तिसंगत व्याख्या का यत्न किया है। जगद्विख्यात रशियन मनीषी 'टाल्स्टाय'

ने 'What is Religion ?' में ईसाई मत के सिद्धान्तों की तीव्र आलोचना करते हुए लिखा है कि—

"The very foundations of this religion (Christian)admitted by all are so absured and im-moral, and seem so counter to right feeling and to common sense, that man can not believe in them. It is possible to say with one's lips 'I bclieve the world was created six thousand years ago, or I bclieve Christ flew up in the sky and sat down next to his 'Father'. or 'God is one and at the same time three,'but no one can believe things for the words have no sense, And therefore men of our modern world who profess this perverted form of christiianity really bclieve in nothing at all."
('What is Religian' by Count Tolstoy, Published by Tagore & Co. Madras P.19)

सारांश यह कि "इस ईसाई मत के आधार ही इतने असङ्गत व अनैतिक हैं और ठीक भावना एवं सामान्य बुद्धि के इतने विरुद्ध है कि कोई उन पर विश्वास नहीं कर सकता। मुख से यह कह देना सम्भव है कि मैं यह विश्वास करता हूं कि संसार ६००० वर्ष पूर्व बना था या मैं विश्वास करता हूं कि ईसामसीह आकाश में उड़ गया और अपने पिता (परमेश्वर) के पास बैठ गया अथवा ईश्वर एक है साथ ही उसी समय तीन, किन्तु कोई मनुष्य इनमें वस्तुतः विश्वास नहीं कर सकता क्योंकि इन शब्दों का कोई अर्थ नहीं। इसलिए हमारे वर्तमान जगत् के जो मनुष्य इस ईसाई मत के बिगड़े हुए वा विकृत रूप में विश्वास करने का दावा भरते हैं वस्तुतः किसी चीज में विश्वास नहीं करते।"

तालस्ताय जगद्विख्यात विचारक था और इस बात के स्पष्ट प्रमाण उपलब्ध होते हैं कि उसने महर्षि दयानन्द कृत सत्यार्थ प्रकाश को पढ़ा था। हमारे मान्य आचार्य श्रीरामदेवजी ने हमें गुरुकुल में

अध्ययन काल (सन् १९१७-१८ ई०) में बताया था और मुझे स्मरण है कि गुरुकुल काङ्गड़ी के उत्सव पर भी अपने भाषण में कहा था कि उन्होंने तालस्ताय के पास सत्यार्थप्रकाश का अँग्रेजी अनुवाद भेजा था। तालस्ताय के इन तथा वेदादि विषयक् विचारों पर महर्षिदयानन्द के विचारों की छाप स्पष्ट है। यद्यपि बर्नार्डशा आदि के विषय में मैं निश्चय से नहीं कह सकता। ईसाई विचारकों ने 'Holy Trinity? के स्थान पर'Unitarianism'वा एकेश्वरवाद अपनाया। बाइबिलमें वर्णित चमत्कारों से इन्कार करते हुए उनकी आलङ्कारिक व्याख्या की। कई मनीषियों ने ईसा के तथाकथित चमत्कारों से सर्वथा इन्कार करते हुए रेनन् के समान ईसा के पूर्णतया मानव जीवन को जनता और विद्वानों के सम्मुख प्रस्तुत किया यहाँ तक कि सुप्रसिद्ध ईसाई पादरी सन्दर लैण्ड को 'The story of the Bible' में स्पष्ट स्वीकार करना पड़ा कि—

'The verdict of the competant scholarship is unequivocal and unanimous that these Gospel records are human and as human contain human imperfections. They display no omnisience on the part of their writers or their compilers, how can they be free from errors ?' (The stoty of the Bible by Rev. V. T. Suderland P. 132-133)

अर्थात् समर्थ विद्वानों का यह असन्दिग्ध तथा सर्व सम्मत निर्णय है कि ईजील की रचनाएं मानुषी हैं और मानुषी होने के कारण इनमें मानुषी त्रुटियाँ भा हैं। वे अपने लेखकों वा संग्रहकर्त्ताओं की सर्वज्ञता का कोई प्रदर्शन नहीं करतीं, फिर वे कैसे भूलों से रहित हैं?

बाइबल में परस्पर विरोध को स्वीकार करते हुए पादरी सन्दरलैंड कहते हैं'Both Testaments Contatn numerous contradlctions' (P. 252) अर्थात् दोनों समाचारों में परस्पर अनेक विरोध हैं। इन परस्पर विरोधों के बहुत से स्पष्ट उदाहरण डा० सन्दरलेण्ड ने दिये हैं।

महर्षि दयानन्द सरस्वती की समालोचना के प्रकाश में बाइबिल के हिन्दी अनुवादों में भी बहुत परिवर्तन किया गया है। उदाहरणार्थ उत्पत्ति (Genesis) आयत ६, ७, ८ का पुराना हिन्दी अनुवाद इस प्रकार था—

पुराना अनुवाद—

"और ईश्वर ने कहा कि पानियों (जलों) के मध्य में आकाश होवे और पानियों को पानियों से विभाग करे तब ईश्वर ने आकाश को बनाया और आकाश के नीचे के पानियों को आकाश के ऊपर के पानियों से विभाग दिया और ऐसा होगया और ईश्वर ने आकाश को स्वर्ग कहा और सांझ और विहान दूसरा दिन हुआ।"

नया अनुवाद—'तब परमेश्वर ने कहा कि जल के बीच एक ऐसा अन्तर हो कि जल दो भाग हो जावें। तब परमेश्वर ने एक अन्तर करके उसके नीचे के जल और ऊपर के जल को अलग-अलग किया और वैसा ही हो गया और परमेश्वर ने उस अन्तर को आकाश कहा तथा सांझ हुई फिर भोर हुआ। इस प्रकार दूसरा दिन हो गया।

इन दोनों को ध्यान से देखा जाए तो कितना अन्तर है। पुराने अनुवाद के 'ईश्वर ने आकाश को स्वर्ग कहा' वाक्य ने नये में यह रूप धारण किया है—परमेश्वरने उस अन्तर को आकाश कहा।' आकाश ने स्वर्ग को भगा दिया और अन्तर न आकाश का स्थान ले लिया। इस परिवर्तन का मूल ऋषि कृत समीक्षा ही है। अब विस्तारभय से अन्य उदाहरण देने के प्रलोभन का संवरण करते हुए मैं इस्लाम पर महर्षि दयानन्द के प्रभाव का संक्षेप से निरूपण करता हूँ। ※

इस्लाम पर प्रभाव

इस्लाम की युक्तियुक्त स्पष्ट आलोचना महर्षि दयानन्द ने सत्यार्थप्रकाश के चतुर्दश समुल्लास में की है। इसका पढ़कर विचारशील मुसलमानों ने कुरान की नई व्याख्या उनके आक्षेपों से बचने के लिये प्रस्तुत की, जिनमें महर्षि दयानन्द के परम भक्त और मित्र सर सय्यद खाँ (अलीगढ़ मुस्लिम युनिवर्सिटी के संस्थापक) अहमदिया सम्प्रदाय मौलाना मुहम्मद अली और मौलाना अब्दुल कलाम आजाद का नाभ विशेष उल्लेखनीय है। सर सय्यद अहमद खाँ ने लिखा—"अगर बहिश्त के मानी वही हैं जो आज कल लिये जाते हैं तो बहिश्त से रण्डियों का चकला अच्छा है। उन्होंने बहिश्त से उत्तम गृहस्थाश्रम का मतलब बताया।

सरसय्यद का महर्षि दयानन्द के प्रति कितना आदर का भाव था यह उनके उन शब्दों से स्पष्ट ज्ञात होता है जो उन्होने महर्षि दयानन्द के देहवासान के पश्चात् ६ नव० १८८३के अलीगढ़ इन्सीट्यूट मैगजीन में लिखे थे। उन्होंने लिखा—"निहायत अफसोस की बात है कि स्वामी दयानन्द साहब ने जो संस्कृत के बड़े आलम और वेद के बहुत बड़े मुहक्किक थे ३० अक्टू० को शाम अजमेर में इन्तकाल किया। इलावा इलाम फजल के निहायत नेक और दरवेश सिफ्त आदमी थे। इनके मोहतकिद (अनुयायी) इनको देवता मानते थे और बेशक वे इसी लायक थे वे सिर्फ ज्योति स्वरूप निराकार के सिवाय दूसरे की पूजा जायज नहीं रखते थे। हम से और स्वामी दयानन्द मरहूम से बहुत मुलाकात थी। हम हमेशा इनका निहायत अदब (आदर)

करते थे कि हरेक मजहब वाले को इनका अदब लाजिम था। बहरहाल वे ऐसे शख्स थे जिनका मसल इस वक्त हिन्दुस्तान में नहीं है। और हरेक शख्स को उनकी वफात का गम करना लाजमी है कि ऐसा बेनजीर शख्स (अनुपम मनुष्य) इनके दरमियान से जाता रहा।

(सरसय्यद अहमद खाँ–अलीगढ़ इन्स्टीट्यूट मेगजीन)

कुरान शरीफ की आयतों (सू० २. रु. १९. आ. १६१) का अनुवाद 'जो लोग (जीते जी दीनहक से) इन्कार करते रहे और इन्कार की ही हालत में मर गये, यही है जिन पर खुदा की लानत और फरिस्तों की और आदमियों की सबकी हमेशा २ इसी फिरकार में रहेंगे। न तो उन पर से अजाव (दुःख) ही हल्का किया जाएगा और न उनको (अजाव के बीच २ में) मुहलत ही मिलेगी।

(डिपुटी नजीर अहमद आदि कृत अनुवाद से)

'फिर जबयदब के महीने निकल जायें तो मुमिकीन को जहाँ पाओ कतल करो और उनको गिरफ्तार करो और उनका मुहासरा उनकी ताक में हो। (सू. ९ रु. १ आ. ५ का डिपुटी नजर अहमद अलीगढ़ का उर्दू अनुवाद)

प्रायः मुसलमान भाइयों का कुरान की शिक्षाओं का ऐसा ही विश्वास और आचरण रहा है जैसा कि सुप्रसिद्ध मुस्लिम विद्वान् मजीद खद्दूरी ने 'Tae Law of war and peace in islam में दिखाया है पर अब महर्षि दयानन्द कृत समालोचना से भयभीत वा उससे प्रभावित होकर इनकी नई व्याख्या का यत्न मौलवी मुहम्मद अली एम. ए. ने अपने कुरान शरीफ के अंग्रेजी अनुवाद की भूमिका में लिखा है कि 'It (The Holy quran) preaches equal love for all.'

(Introduction P. (vIII)

अर्थात् कुरान सबके साथ समान रूप से प्रेम करना सिखाता व उसका प्रचार करता है।

मौलाना अबुलकलाम आजाद ने कुरान का उर्दू में जो अनु-

वाद किया उसके प्रथम भाग का अनुवाद सय्यद जहरुल हुसन हाशिमी भागलपुरी ने 'कुरान और धार्मिक मतभेद' इसमें से किया उसमें से निम्न उदाहरणा से उनका अभिप्राय स्पष्ट है।

"मनुष्य का कल्याण और उसकी मुक्ति उसके विश्वास और उसके कर्मों पर निर्भर है न कि सम्प्रदाय विशेष पर। मनुष्यमात्र के लिये ईश्वरीय धर्म एक ही है और एक समान सबको उसकी शिक्षा दी गई है। इसलिए धर्मों के अनुयायियों ने धर्म की एकता और उसके विश्वव्यापी तत्व को नष्ट कर जो बहुत से विरोधी और परस्पर लड़ने वाले जत्थे बना लिये हैं यह साफ उनकी गुमराही है।

(कुरान व धार्मिक मतभेद भूमिका पृ० ४८)

'कुरान कहता है कि प्रत्येक ऐसे सच्चे व्यक्ति का जो ईश्वरीय धर्म के मार्ग पर चलना चाहता है यह कर्त्तव्य है कि वगैर किसी भेदभाव के सब पैगम्बरों, सब धर्मों के उपदेशों पर एक समान रूप से विश्वास करें और किसी एक से भी इन्कार न करे। उसका तरीका यह होना चाहिए कि वह कहें कि सचाई जहाँ भी प्रकट हुई और जिस किसी के भी मुख से प्रकट हुई है और उस पर मेरा विश्वास है।

(कुरान और धार्मिक मतभेद पृ० ७६)

कुरान किसी नई मजहबी गिरोहबन्दी का सन्देश लेकर संसार में नहीं आया वलिक वह विविध धर्मों की असली लड़ाइयों-झगड़ों से संसार को मुक्त कर उन सबको उसी एक मार्ग पर एकत्र कर देना चाहता है जो सबका एक सामान्य और सर्वसम्मत मार्ग है। कुरान बार २ कहता है कि जिस मार्ग पर मैं लोगों को बुलाता हूँ वह कोई नया मार्ग नहीं और न सत्य का कोई पृथक् मार्ग हो हो सकता है। मेरा मार्ग वही है जो सनातन से चला आता है और जिसकी ओर सब धर्मों के प्रवर्तकों ने मनुष्य को बुलाया है।'

(कुरान और धार्मिक मतभेद पृ० ७२)

मुहम्मद जरीफे नामक एक दूसरे मुस्लिम विद्वान् ने 'इस्लाम और अकलयात' में लिखा है 'हैरानी की बात है कि दुनियाँ में अब तक

ऐसे लोग हैं जो कि खुदा, फरिश्तों, जिन्नों, कयामत, हिसाब, मीजान, जन्नत, दोजख के किस्से कहानियों को सच्चा समझते हैं। सूरज गरम पानी के चश्मे में गायब (अस्त) हो गया। जमीन चटाई की तरह चपटी है। हजरत मुहम्मद साहब ने चाँद के दो टुकड़े कर दिये इत्यादि मोजजे (करामातें) अब मूर्खों और अनपढ़ मुसलमानों के सुनने-सुनानें का विषय रह गया है। बहिश्त हूरों, शराब की नहरों वगैरह का लालच देकर आज बुद्धिमान् लोगों को इस्लाम में दाखिल करना कठिन है। **यहाँ तो बडे २ मुसलमान मौलवी कुरान श.रीफ की फिलास्फी को पसन्द नहीं करते।"**

सर्वहितैषी महर्षि दयानन्द को मुसलमान साधु (रहीमबख्श सूफी) की श्रद्धाञ्जलि

मुसलमान साधु रहीमबख्श सूफी ने महर्षि दयानन्द का गौरव संवत् १९४५ (१८८८ ई०) में इस प्रकार वर्णन किया जो जिला मुजफ्फर नगर के शिकारपुर ग्राम के रामजीलाल की पोथी में श्री चौ० कबूलसिंह जी नें प्राप्त किया था।

सचाई पर झुठाई कभी गालिब[1] आती नहीं।
और वलियों[2] की जबान में,बुराई सुनी जाती नहीं॥
किसी चीज की कीमत उसका समय आने में होती है।
और मुल्कहिन्द में वलियों की कदर[3],जमाना गुजर जाने पै होती है।
दयानन्द ने इस मुल्क को, गहरी नींद से जगाया।
मुझे अफसोस यह है ऐवज[4] में उन्हें जहर पिलाया॥
हिन्दू हो चाहे हो मुसलमाँ इस मुल्क हिन्द का।
इन्साफ[5] से कह दो कि दयानन्द था—
इस जमाने में रहनुमा[6] सबका॥
वतन[7] को बचाया मजहबों को बचाया।
था इन पर अँग्रेजों का गलबा छाया॥

मेरी हाथ जोड़कर है उनके कदमों में सलाम।
मेरे जमीर[8] का है यही, सच्चा ईमान व पैगाम[9] ।।

इस प्रकार इस्लाम, ईसाईमत, बौद्ध, जैन, पारसी और पौराणिक आदि सभी मतों के निष्पक्ष, विद्वानों पर महर्षि दयानन्द की युक्तियुक्त समालोचना का प्रभाव स्पष्टतया ज्ञात होता है। ऐसे सत्य के निर्भय प्रचारक युग प्रवर्तक महर्षि दयानन्द को हम सादर प्रणाम करते हैं।

१. विजयी, २. ऋषिमुनि, ३. महत्व, ४. बदले में, ५. न्याय ६. मार्गदर्शक, ७. देश, ८, अन्तरात्मा, ९. सन्देश।

सत्य प्रकाशन के कुछ उपयोगी ट्रैक्ट

बाल शिक्षा	)२०	मुक्ति सोपान [१]	)६०
नवीन वेदान्त मत खण्डन	)१०	मुक्ति सोपान [२]	)६०
केनोपनिषद्	)६५	मुक्ति सोपान [३]	)६०
मुण्डकोपनिषद्	१)रु०	कल्याण मार्ग का पथिक	२)२५
माण्डूक्योपनिषद्	१)रु०	धर्मोपदेश (१)	१)५०
एतरेयोपनिषद्	)४०	धर्मोपदेश (२)	१)
गायत्री गौरव	)३५	मृतकश्राद्ध समीक्षा	
विषपान अमृतदान	)३०	धूम्रपान सर्वनाश	
बाल रामायण	)६०	शिखा सूत्र	
नव ग्रह समीक्षा	)६०	सत्यानन्द सूक्ति सुधा	
भारत माँ की बेड़ियाँ	)३५	श्री कृष्ण सन्देश	
क्या भूत होते हैं ?	)६०	चूहे की कहानी	)१५
इतिहास पुष्पाञ्जलि	)७५	भगत की दुर्गति	)१५